आतस दुनीआ खुनक नामु खुदाइआ ॥
कलि ताती ठांढा हरि नाउ ॥

भाग - 4

फरीदा मै जानिआ दुखु मुझ कू दुखु सबाइऐ जगि ॥
ऊचे चड़ि कै देखिआ तां घरि घरि एहा अगि ॥ (पृ. 1382)

गुरबाणी की उपरोक्त पंक्ति के अनुसार, इस **'सरब-रही भरपूर' गुप्त मानसिक अग्नि को—**

जानने
समझने
पहचानने
बूझने
निदान

करने की अत्यंत आवश्यकता है, क्योंकि **'रोग' का निदान किए बिना—** उसका **इलाज** नहीं हो सकता या गलत होगा।

पिछले भागों में इस आन्तरिक **'गुप्त अग्नि'** के विषय में विस्तार सहित वर्णन किया जा चुका है।

याद रखने योग्य बात यह है कि इस **'मानसिक अग्नि'** के विषय में—

पढ़-पढ़ा कर
सुन-सुना कर
समझ-समझा कर
थोथा ज्ञान घोट कर
वेदांत की फिलास्फियों का अध्ययन कर

वैज्ञानिक खोज

अनेक वेष

कर्म-कांड

पाठ-पूजा

दान-पुण्य

धार्मिक साधना

द्वारा—

जाना

समझा

चीन्हा

पहचाना

नहीं जा सकता ।

पड़ि पंडितु अवरा समझाए ।।
घर जलते की खबरि न पाए ।। (पृ. 1046)

छोडिहु निंदा ताति पराई ।।
पड़ि पड़ि दझहि साति न आई ।। (पृ. 1026)

अंतरि अगनि बाहरि तनु सुआह ।।
गलि पाथर कैसे तरै अथाह ।। (पृ. 267)

भेख अनेक अगनि नही बुझै ।।
कोटि उपाव दरगह नही सिझै ।। (पृ. 266)

त्रिपति न आवी वेदि मथि अगनी अंदरि तपति तपाइआ ।
(वा. भा. गु. 1@11)

यह **गुप्त मानसिक 'अग्नि'**, मच्छर तथा कीड़े-मकोड़ों की भांति, **भ्रम-ग्रस्त अहम् के अंधकार या मायिकी अज्ञानता द्वारा,** हमारे मन

के सूक्ष्म **'भावावेष'** में ही —

उत्पन्न होती है

सुलगती है

जलती है

प्रवृत होती है

प्रज्जवलित होती है

लपटें छोडती है

प्रचंड ज्वाला बनती है

भस्म करती है

तबाह करती है।

दूसरे शब्दों में, इन **मानसिक वासनाओं की गुप्त अग्नि की —**

जन्म-भूमि

जीवन-क्षेत्र

खेल-अखाड़ा

व्यवहार

प्रधानता

का केन्द्र या स्त्रोत, हमारे भीतरी मानसिक मंडल अथवा —

मन

चित

बुद्धि

अन्तःकरण

तक सीमित है, जिसमें किसी **उक्साहट द्वारा, 'ज्वालामुखी' की भांति यह गुप्त अग्नि हमारे शरीर में से बाहर की ओर —**

जल कर

प्रकट होती

प्रकाशित होती

गरजती

बरसती

तबाही मचाती है।

इसलिए इस **गुप्त अग्नि को पहचान कर** अथवा **बूझकर** इसे **'शांत' करने का—**

प्रबन्ध

बचाव

इलाज

करने का **उपाय** भी, हमारे **'भीतरी आत्मिक मंडल'** में ही हो सकता है।

अंधकार— प्रकाश की **'अनुपस्थिति'** का ही नाम है।

अंधकार— 'ढोने' से खत्म नहीं होता ।

अग्नि — को लकड़ी तथा तेल आदि **ज्वलनशील पदार्थों** से नहीं बुझाया जा सकता।

इसी प्रकार **'अहम्' का भ्रम भी** आत्मिक रोशनी की **अनुपस्थिति या भूल के कारण ही उत्पन्न हुआ है।**

अफसोस की बात है कि इस भ्रम-ग्रस्त मायिकी **अज्ञानता द्वारा लगाई हुई गुप्त आग में—**

रहते हुए

बैठते हुए

बसते हुए

जन्म लेते हुए

मरते हुए

दुख भोगते हुए
प्रवृत्त होते हुए

हमेंकितने—

वर्ष
उम्र
जन्म
युग

बीत गए हैं! परन्तु, फिर भी इस **'गुप्त अग्नि' के विषय में हमें—**

पता ही नहीं
ज्ञान ही नहीं
ख्याल ही नहीं
पहचान ही नहीं
चिंता ही नहीं
निश्चय ही नहीं !!!

जब 'रोग' का ख्याल या अहसास ही न हो, तो उसके इलाज या बचाव का प्रश्न ही नहीं उठता !!!

यह **'मानसिक अग्नि'** हमारे भीतर, **मन, चित्त, बुद्धि तथा अन्तःकरण में इतनी —**

धँस
बस
रस
समा

गई है, कि यह हमारे जीवन का अभिन्न अंग बन गई है, तथा हमारे जीवन के **हर** 'पक्ष' **में इसके ताप का—**

प्रकाश
प्रकटाव

बोल-बाला

व्यवहार

हो रहा है, जिसकी—

दमक

जलवा

ताप

लपटें

प्रचंड ज्वाला

जलन

धूँआ

कालिख

तबाही

हर तरफ दिखाई दे रही है।

जब हम **आराम** कर रहे होते हैं, तो हमारा शरीर **साधारण** होता है। परन्तु ज्यों-ज्यों हम **कार्य** करते हैं या दौड़ते हैं— त्यों-त्यों हमारा शरीर **गर्म** होता जाता है। यही बात मशीनों की है।

इसी प्रकार ज्यों-ज्यों हमारी **वृत्तियाँ बाहरमुख होकर दौड़ती हैं—** त्यों-त्यों इन वृत्तियों में **मानसिक अग्नि बढ़ती जाती है।**

इसका अर्थ यह हुआ, कि **वृत्तियों का —**

बाहरमुख होना ही

'अग्नि'

का मूल कारण है, तथा—

अंतर-मुख रहना ही

'शीतलता'

का अनुभव करना है।

तभी गुरबाणी में, इस **'भीतरी गुप्त अग्नि'** से बचाव के लिए यूँ उपदेश दिए गए हैं—

थिरु घरि बैसहु हरि जन पिआरे ॥
सतिगुरि तुमरे काज सवारे ॥ (पृ. 201)

मन रे थिरु रहु मतु कत जाही जीउ ॥ (पृ. 598)

सेखा चउचकिआ चउवाइआ एहु मनु इकतु घरि आणि ॥
(पृ. 646)

कलि ताती ठांढा हरि नाउ ॥
सिमरि सिमरि सदा सुख पाउ ॥ (पृ. 288)

बंदे खोजु दिल हर रोज ना फिरु परेसानी माहि ॥
(पृ. 727)

इसु मन कउ कोई खोजहु भाई ॥
मनु खोजत नामु नउ निधि पाई ॥ (पृ. 1128)

कई बार हम जानबूझ कर या देखादेखी **व्यर्थ धंधों या झमेलों में** इतने गलतान हो जाते हैं कि हमें **'सिर खुजाने' की फुर्सत भी नहीं होती ।**

इस प्रकार हम अपने मन के लिए, **'खाह-म-खाह' बेमतलब 'झंझट' या क्लेश से, अनावश्यक चिंता-फिकर मोल ले लेते हैं।**

इन **स्वयं आमंत्रित, अनावश्यक झमेलों** (self created unnecessary problems) द्वारा, हम कई झंझटों तथा **पेचीदे मामलों** (complicated problems) में इतने **फंस जाते हैं**, कि इन्हे **हल** करने में ही हमारी **वृत्ति तथा शक्ति खर्च होती रहती है,** तथा इन्हीं कल्पनाओं के चिन्ता-फिकर में हम जलते-सड़ते रहते हैं।

पलचि पलचि सगली मुई झूठै धंधै मोहु ॥ (पृ. 133)

इहु मनु धंधै बांधा करम कमाइ ॥
माइआ मूठा सदा बिललाइ ॥ (पृ. 1176)

माइआ मोहु बहु चितवदे बहु आसा लोभु विकार ॥
मनमुखि असथिरु ना थीऐ मरि बिनसि जाइ खिन वार ॥
(पृ. 1417)

परन्तु हमारा मन जन्म-जन्मांतरों से **बाहरमुख दौड़ने का इतना आदी हो गया है, कि एक क्षण-पल भी नहीं टिकता!** तभी इसे 'पारे' की भांति **'चंचल'** कहा गया है।

आम जिज्ञासु की भी यही शिकायत है, कि पाठ, संगत या कीर्तन में **मन नहीं टिकता।**

इसका कारण यह है, कि जन्मों-जन्मों की आदत अनुसार **'बाहर दौड़ना'** मन का —

स्वभाव
आदत
चलन
जीवन-प्रवाह (life flow)

बन चुका है।

गुरबाणी अनुसार सारी दुनिया इस **'मानसिक अग्नि'** में जल-भुन कर **'अग्नि-रूप'** ही बनी हुई है, तभी इसे —

'आतिस दुनीआ'
'जगत जलंदा'
'अगन कुंट'
'अगन शोक सागर'
'पावक सागर'

बताया गया है।

जब हमारा मन **'बाहर-मुख'** होता है तो —

1. अपने दिव्य केन्द्र अथवा अंतर-आत्मा से **दूर होकर या 'भूल' कर कमज़ोर हो जाता है।**

2. वृत्तियों की तीव्र गति या **दौड़** (exertion) से, मन की **आन्तरिक गुप्त अग्नि बढ़ जाती है।**

3. मन पर बाह्य वातावरण या 'कुसंगत' का प्रभाव पड़ता है, तथा इस **बाहरी उक्साहट से,** मन की 'गुप्त अग्नि' तीव्र होकर ज्वाला बन जाती है।

4. इस प्रकार हम केवल अपने मन-तन को ही नहीं 'जलाते' बल्कि **निकटवर्तियों को भी ' चिंगारी' लगा देते हैं।**

5. हमारे उत्तम तथा नेक कर्म और भक्ति भावना भी, गुप्त **अग्नि के प्रभाव के कारण, अग्नि का ही रूप धारण कर** प्रचंड लौ ही बन जाते हैं।

6. **हर 'उत्तेजना' के पश्चात् हमारा मन कमजोर, निढाल तथा हताश** (frustrated) **हो जाता है।**

7. फिर नशेड़ी की **'टोट'** की भांति पुनः पहले जैसी मानसिक तथा आत्मिक अवस्था में आना **मुश्किल हो जाता है।**

उपरोक्त विचारों का निष्कर्ष यह है कि जब तक हमारा मन 'बाहर-मुख' होकर माया के भ्रम-भुलाव का **प्रभाव लेता रहेगा**— तब तक हम इस 'गुप्त' **'मानसिक अग्नि' से बच नहीं सकेंगे** । चाहे कितने—

पाठ-पूजा
कथा-वार्ता
व्याख्यान
कर्म-कांड

हठ-धर्म

सेवा

करते जाऐं !!!

इस प्रकार हम सभी जीव इस 'मानसिक अग्नि' में **'गुप्त रूप'** से **जल-भुन रहें हैं।** परन्तु हमें **इसकी सूझ ही नहीं है।**

क्योंकि हम इस 'गुप्त अग्नि' में जन्म-जन्मांतरों से जन्म लेते, पलते, विचरण करते, खचित होते तथा मरते आये हैं, तभी यह 'गुप्त-अग्नि' हमारा **'जीवन-अंग' बन चुकी है।**

पलचि पलचि सगली मुई झूठै धंधै मोहु ।। (पृ. 133)

चमड़ा रंगने वालों के आंगन में **चमड़े की 'दुर्गन्ध' होती है।** उनकी **'सूंघने की शक्ति' समाप्त हो जाती है** या कम हो जाती है। जब कभी बाहरी व्यक्ति उनके घर आए तो उसे **चमड़े की दुर्गन्ध महसूस होती है।** परन्तु चमार बिरादरी दिन-रात, सारी उमर, उसी दुर्गन्ध वाले वायुमंडल की **'आदी'** हो जाती है तथा उन्हें चमड़े की दुर्गन्ध **महसूस ही नहीं होती ।**

इसी प्रकार आग की भट्ठी में काम करने वाले मज़दूर भी अग्नि के **सेंक के 'आदी' हो जाते हैं** तथा दूसरों की अपेक्षा उन्हें गर्मी कम महसूस होती है।

यह उदाहरण हमारी गुप्त मानसिक अग्नि के सेंक पर भी लागू होता है। हम जन्म-जन्म से इस मानसिक अग्नि के **गुप्त सेंक में जीवन व्यतीत करते आऐ हैं।** इसलिए हमें यह **गुप्त सेंक अनुभव ही नहीं होता** तथा न ही हमें इस गुप्त अग्नि का ज्ञान है।

जब हम गुरबाणी की निम्नलिखित पंक्तियां पढ़ते-सुनते हैं, तो इनकी ओर गौर या **ध्यान ही नहीं करते**, क्योंकि हम यह समझते हैं

कि यह अग्नि **हमें नहीं लगी!!** यह पंक्तियां **हम पर नहीं लागू होती!! किसी अन्य 'मनमुख' के लिए यह बाणी रची गयी होगी!!!**

मनमुख माइआ मोहि विआपे दूजै भाइ मनूआ थिरु नाहि ॥
अनदिनु जलत रहहि दिनु राती हउमै खपहि खपाहि ॥

(पृ. 652)

साकत मूड़ माइआ के बधिक विचि माइआ फिरहि फिरंदे ॥
त्रिसना जलत किरत के बाधे जिउ तेली बलद भवंदे ॥

(पृ. 800)

माइआ मोहु अंधु अंधारा ॥ हउमै मेरा पसरिआ पासारा ॥
अनदिनु जलत रहै दिनु राती गुर बिनु सांति न होई हे ॥

(पृ. 1045)

पापी का घरु अगने माहि ॥
जलत रहै मिटवै कब नाहि ॥ (पृ. 1165)

मनमुख बोले अंधुले तिसु महि अगनी का वासु ॥ (पृ. 1415)

चाहे हम इस भीतरी 'गुप्त अग्नि' को **अनुभव करें या न**, परन्तु फिर भी जब तक हमारे हृदय में **निम्नलिखित वासनाएं—**

द्वैत-भाव
मैं-मेरी
ईर्ष्या
द्वेष
शक
सड़न
कुढ़न
रोष
शिकवे

तअस्सुब

घृणा

शिकायत

वैर

विरोध

बदला

काम

क्रोध

लोभ

मोह

अहंकार

तृष्णा

आदि **में से किसी भी एक 'वासना' का अंश है**, तब तक हमें **निश्चय** कर लेना चाहिए कि हमारे हृदय या अंतःकरण की गहराईयों में इस मानसिक अग्नि का **'तत्त' या 'मूल' दबा हुआ या छुपा हुआ है**, जो किसी समय भी प्रज्जवलित हो कर **भड़क सकता है।**

हमें अपने अपने हृदय में ईमानदारी से, गौर से खोजना है कि हमारे भीतर इन **'वासनाओं' का कोई 'अंश' है या नहीं ?**

यदि है — तो लापरवाह होने या छुपाने की **अपेक्षा,** गुरबाणी के प्रकाश तथा साध संगत की सहायता से, इन **वासनाओं से बचने का उपाय** करना चाहिए।

ज्यों ज्यों हम **साध संगत** में विचरण करते हुए अंतर-मुख होकर **नाम-सिमरन करेंगे,** त्यों-त्यों यह गुप्त 'अग्नि-तत्' **धीमे पड़ते जाऐंगे** और धीरे-धीरे बुझ जाएंगे।

जगतु जलंदा डिठु मै हउमै दूजै भाइ ॥
नानक गुर सरणाई उबरे सचु मनि सबदि धिआइ ॥ (पृ. 651)

परन्तु यह बात आम तौर से देखने में आती है कि हम अपने भीतर इस गुप्त अग्नि को अनुभव करने या इससे **भयभीत होने की अपेक्षा,** इससे जान-बूझ कर लापरवाह या मस्त हो जाते हैं। इस प्रकार इन वासनाओं की 'गुप्त अग्नि' **बढ़ती** जाती है तथा **ताकतवर** हो जाती है। हमारी इस **लापरवाही या उपेक्षा का परिणाम** हम दिन-रात, सारी उमर भोगते रहतें हैं, बल्कि यह 'गुप्त अग्नि' जीव के साथ **अगले जन्म में भी प्रविष्ट हो जाती है।** इस प्रकार इस 'आतिस दुनीआ' की **प्रचंड अग्नि का चक्कर** (vicious circle) **हमारे जीवन में चलता रहता है।**

गुरबाणी में हमारी इस अवस्था को यूँ दर्शाया गया है—

हंसु हेतु लोभु कोपु चारे नदीआ अगि ।।
पवहि दझहि नानका तरीऐ करमी लगि ।। (पृ. 147)

गूझी भाहि जलै संसारा भगत न बिआपै माइआ ।। (पृ. 673)

अगनि कुटंब सागर संसार ।।
भरम मोह अगिआन अंधार ।। (पृ. 675)

त्रिसना अगनि जलै संसारा ।।
जलि जलि खपै बहुतु विकारा ।। (पृ. 1044)

माइआ अगनि जलै संसारे ।।
गुरमुखि निवारै सबदि वीचारे ।। (पृ. 1049)

बिनु नावै सूका संसारु ।।
अगनि त्रिसना जलै वारो वार ।। (पृ. 1173)

आतस दुनीआ खुनक नामु खुदाइआ ।। (पृ. 1291)

उठी गिलानि जगत विचि
हउमै अंदरि जलै लुकाई । (वा. भा. गु. 1@7)

बाबा देखै धिआन धरि

जलती सभि पृथवी दिसि आई । (वा. भा. गु. 1@24)

उपरोक्त विचारों को स्पष्ट करने के लिए कुछ **व्यवहारिक** (practical) उदाहरण दिए जाते हैं —

1. यदि किसी को उपरोक्त पंक्तियां सुना कर बताया जाता है, कि हम भी इसी **'गुप्त-अग्नि'** में जल-भुन रहे हैं तथा इससे बचने का कोई उपाय करना चाहिए, तो इसका जवाब यूँ दिया जाता है, " जी हम दुनियादार गृहस्थी लोग हैं, हमारे लिए इतना ही काफी है, कि हम —

गुरुद्वारे माथा टेक आते हैं
संगत में हाजिर हो आते हैं
बाणी का पाठ कर लेते हैं
कीर्तन सुनते हैं
सेवा करते हैं
दान-पुण्य करते हैं
बुरा नहीं करते
हो सके तो भला करते हैं,

इससे आगे गूढ़-ज्ञान घोटना या कमाना —

**"ज्ञानियों-ध्यानियों, साधु-संतों का कार्य है,
क्योंकि वे खाली बैठे इसी काम के लायक हैं!!"**

2. यदि किसी से 'सिमरन' की बात करते हैं, तो बना-बनाया जवाब मिलता है —

"जी हम गृहस्थी लोग हैं। हमें इतने झमेले पड़े हैं कि सिमरन करने की **फुर्सत ही कहाँ है**? घर गृहस्थी के मामलों में इतने व्यस्त हैं कि **और कुछ सूझता ही नहीं।** यदि कहीं सिमरन करने बैठते हैं तो नींद

आ जाती है, या **मन दौड़ता फिरता है,** एक पल के लिए भी नहीं टिकता, ग्रहस्थी के लिए तो —

गुरुद्वारे जाकर माथा टेकना
जितना हो सके पाठ करना
कारोबार करना
आने-जाने वालों की सेवा करनी
हो सके तो भला करना

ही काफी है— ग्रहस्थी का यही 'सिमरन' तथा भजन-बंदगी है।"

3. जब पूछा जाता है, कि तुम्हारे घर हर प्रकार के सुख-आराम के साधन हैं, तुम्हें **कोई झमेले नहीं होने चाहिए— तो गहरी सी सांस लेकर यूँ आहें भरते हैं—**

"**जी पूछो न!** अनगिनत झमेलों तथा समस्याओं की चिन्ता से **कमर टूटी पड़ी है,** तथा चिन्ता दिन-रात पीछा नहीं छोड़ती!!"

घर में कोई न कोई बीमार ही रहता है।
लड़कियां जवान हैं, शादी की चिन्ता है।
एक विवाहित लड़की विधवा हो गई है।
दूसरी लड़की का पति ऐयाश है।
तीसरी लड़की का पति उसे लेने नहीं आता।
बहु के लड़का नहीं है, लड़कियां ही पैदा होती हैं।
किरायेदारों से झगड़ा रहता है।
कर्ज़दारों से मुकद्दमा चल रहा है।
ज़मीन का 'झमेला है।
इन्कम टैक्स की पेशी होती रहती है।

एक लड़का ऐयाश है, घर उजाड़ता है।

दूसरे का व्यापार फेल हो गया है, ध्यान नहीं देता।

तथा ऐसे अनेकों झमेलों की चिन्ता की **धुक-धुकी** लगी रहती है। **"सिमरन कैसे करें ?"**

4. जब पूछा गया कि इतना अच्छा रहन-सहन (living standard) **कैसे रखते हो**, तो जवाब मिलता है—

जी, मै पटवारी हूं।

पत्नी टीचर है।

एक लड़का कलर्क है।

हां जी, हमारा **वेतन तो कम है**, परन्तु उसकी दया से ऊपर की अच्छी आमदनी हो जाती है तथा पत्नी ने टयूशन भी रखी हैं।

5. जब पूछा जाता है कि आपका **शुगल** क्या है ? तो शीघ्र कह उठे—

"घर के 'झमेले' इतने हैं कि **शुगल कहां सूझते हैं**। चिन्ता से नींद नही आती। गोली खानी पड़ती है या शराब का पेग पीना पड़ता है।"

6. यदि किसी को **सत्संग समारोह में जाने के लिए कहा जाता है** तो कोरा जवाब मिलता है—

जी, हमने घर में ही महाराज का प्रकाश किया हुआ है।

माथा टेक लेते हैं।

प्रभु 'वाक' ले लेते हैं।

ईश्वर अपने भीतर ही है।

और कहीं जाने की आवश्यकता नहीं ।

बाहर जाने से काम बिगड़ते हैं।

थकावट होती है।

खर्चा होता है।

7. जब कहा जाता है कि 'ऊपरी आमदनी' या **'रिश्वत' अनुचित है**, क्योंकि गुरबाणी अनुसार स्वयं अपने हाथों से कमाई करने का आदेश है, तो निडर होकर जवाब देते हैं—

"**भोले लोगो !!** आप तो पुराने ज़माने की बाते करते हो।

आज कल तो **ऊपर की कमाई के बिना गुज़ारा नहीं होता।** जब हम किसी का कार्य कर देते हैं तो वह खुशी से भेंट देता है, हम कौन सा माँगते हैं? **यह अनुचित कैसे हो सकती है**? दूसरी बात यह है कि ऊपर की कमाई या रिश्वत हम सभी के ताने-बाने, ओत-प्रोत जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इतनी धँस-बस गई है, कि इस बिना कोई कार्य ही नहीं हो सकता । छोटे से छोटे कर्मचारी से लेकर बड़े से बड़े अफसर के **खून में यह रच- समा चुकी है।** जब यह **बड़े लोगों के लिए 'उचित' है**, तो **हम गरीबों के लिए कैसे अनुचित हो सकती है**? हम गरीबों का गुज़ारा ही इसी से चलता है — केवल वेतन से तो रोटी भी नहीं निकलती — बाकी अन्य खर्च कैसे पूरे करें?"

8. जब इन्हें बताया जाता है कि शराब बहुत बुरी वस्तु है— इसके बहुत बुरे परिणाम निकलते है, तो जवाब मिलता है —

" शराब तो योगियों तथा देवताओं का **'सोम-रस'** है तथा राजा, महाराजा, नवाब तथा अमीरों का शुगल है। यदि यह बड़े बड़े सयाने लोगों के लिए उचित है, तो हम गरीबों के लिए क्यों बुरी है? हम तो फिकर चिन्ता को टालने के लिए **'घुंट'** पीते हैं, नहीं तो **मानसिक तनाव** (nervous tension) **बढ़ जाता है।**"

इस प्रकार हम **अज्ञानता में कई प्रकार की —**

सयानप

चतुराईयां

ढकोंसले

अड़चने

विवाद

बहाने

बना-बना कर, अपने अनुचित ख्यालों तथा कर्मों को उचित सिद्ध कर, अपने मन को झूठी तसल्ली देकर, 'स्वयं' से 'धोखा' करते हैं तथा मन को और अधिक मलिन करते रहते हैं। इस प्रकार आन्तरिक **'गुप्त अग्नि' को तेल दे रहे हैं**— जिससे तृष्णा की अग्नि को **जला कर** अपने भीतर की **मानसिक अग्नि और प्रचंड कर रहे हैं।**

गुरबाणी में हमारी इस अवस्था को यूं दर्शाया गया है —

मुखि निंदा आखा दिनु राति ।। पर घरु जोही नीच सनाति ।।
कामु क्रोधु तनि वसहि चंडाल ।। धाणक रूपि रहा करतार ।।
फाही सुरति मलूकी वेसु ।। हउ ठगवाड़ा ठगी देसु ।।
खरा सिआणा बहुता भारु ।।
धाणक रूपि रहा करतार ।। (पृ. 24)

गोबिंद हम ऐसे अपराधी ।।
जिनि प्रभि जीउ पिंडु था दिआ तिस की भाउ भगति नही साधी ।। रहाउ ।।
पर धन पर तन पर ती निंदा पर अपबादु न छूटै ।।
आवा गवनु होतु है फुनि फुनि इहु परसंगु न तूटै ।।
जिह घरि कथा होत हरि संतन इक निमख न कीन्हो मै फेरा ।।
लंपट चोर दूत मतवारे तिन संगि सदा बसेरा ।।
काम क्रोध माइआ मद मतसर ए संपै मो माही ।।
दइआ धरमु अरु गुर की सेवा ए सुपनंतरि नाही ।। (पृ. 971)

जानि बूझ कै बावरे तै काजु बिगारिओ ।।
पाप करत सुकचिओ नही नह गरबु निवारिओ ।। (पृ. 727)

कबीर मनु जानै सभ बात जानत ही अउगनु करै ।।
काहे की कुसलात हाथि दीपु कूए परै ।। (पृ. 1376)

(क्रमश ....)